कामकाजी महिलाओं की राह जटिल

हाल ही में यह खबर आई है कि जापान में 28 फीसद महिलाओं ने बच्चों के लिए नौकरी छोड़ी और 50 हजार बच्चे दिनभर के लिए देखभाल वाले गृहों (डे-केयर) की प्रतीक्षा सूची में हैं। जापान में छोटे बच्चों की देखभाल के लिए इस तरह के गृहों को सरकार ही चलाती है, इसलिए सभी को सुविधा नहीं मिल पाती। ऐसे में कामकाजी माताओं के पास नौकरी छोड़ने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं बचता। यह स्थिति सिर्फ जापान की नहीं, लगभग सभी देशों की है। किसी भी संगठन में महिलाओं के नौकरी छोड़ने की घटना या संख्या में कमी आने को सामान्य तौर पर 'लीकिंग पाइपलाइन' कहा जाता है। इस विचार को सबसे पहले अमेरिका में कामकाजी महिलाओं की स्थिति की अर्थशास्त्री एन हुलिट ने अपनी पुस्तक 'क्रिएटिंग ए लाइफः प्रोफेशनल वुमन एंड द क्वेस्ट फॉर चिल्ड्रन' में चर्चा करते हुए कहा कि 40 की उम्र के पड़ाव पर पहुंचीं पेशेवर अमेरिकी महिलाओं में से 42 फीसद संतानहीन थीं लेकिन उनमें से 14 फीसद ने ही यह फैसला लिया था। कारण स्पष्ट था कि पारिवारिक दायित्व कैरियर में रुकावट न बने।

दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि वे परिवार जो आर्थिक सुदृढ़ता को बनाए रखने के लिए महिला सदस्यों से नौकरी करने की अपेक्षा रखते हैं, वे उनके घरेलू दायित्वों को बांटना नहीं चाहते। ऐसे में उनके सामने दो ही रास्ते बचते हैं, या तो वे अपने मातृत्व दायित्व को निभाने के लिए नौकरी छोड़ दें या फिर पेशेवर जिंदगी को बनाए रखने के लिए मां बनने से बचें।

भारत में तो स्थितियां ज्यादा गंभीर हैं। एक और तथ्य सामने आया है कि जो महिलाएं नियमित तौर काम कर रही हैं उनके बच्चों की संख्या भी कम है। ऐसी महिलाओं की प्रजनन दर 10 साल पहले 3.3 फीसद थी, जो अब घट कर 2.9 फीसद तक आ गई है। वहीं गैर कामकाजी महिलाओं की प्रजनन दर 3.1 फीसद के स्तर पर बनी हुई है। ये आंकड़े बता रहे हैं कि कामकाजी महिलाएं दबाव में हैं। पर क्या यह किसी भी समाज के लिए अच्छी स्थिति कही जा सकती है? अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन यानी आईएलओ ने 1919 में अपनी स्थापना के बाद से संस्थागत नौकरियों में महिलाओं की सहभागिता को अपनी प्रस्तावना में शामिल किया था। इसके सौ साल बाद अप्रैल-2019 में आईएलओ ने दुनिया भर में कामकाजी महिलाओं के बारे में जारी विस्तृत रिपोर्ट में हैरान करने वाले तथ्य सामने रखे हैं। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि 2005-2015 के बीच 'मदरहुड एंप्लॉयमेंट पेनल्टी' यानी मां बनने की वजह से नौकरी नहीं कर पाने की संभावना में 38.4 फीसद की बढ़ोतरी हुई है।

इस तथ्य की पुष्टि हाल में एक शोध से हुई है। ब्रिटेन में एक शोध में पाया गया है कि कार्यस्थल पर हर पांचवीं गर्भवती और नई बनी मां से काम के दौरान भेदभाव किया जाता है। अमेरिका की फ्लोरिडा स्टेट यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं का कहना है कि कामकाजी माता के साथ भेदभाव की खबरों के चलते गर्भवती महिलाएं भयभीत हैं और उन्हें अपनी नौकरी जाने का डर सताता है। इन स्थितियों में अमूमन यह तर्क दिया जा सकता है कि जब दुनिया के सभी देशों में मातृत्व अवकाश मिलता है तो यह डर क्यों? यह सच है कि लगभग सभी देश कामकाजी महिलाओं को मातृत्व अवकाश देते हैं, मगर हकीकत यह है कि अधिकतर निजी संस्थान अपने यहां गर्भवती महिलाओं के सामने ऐसे हालात पैदा कर देते हैं जिससे उन्हें नौकरी छोड़ने को मजबूर किया जा सके। पेशेवर एवं प्रबंधकीय पदों पर काम करने वाली महिलाओं से मां बनने के बाद भी उम्मीद की जाती है कि वे सुबह जल्दी दफ्तर पहुंचें और देर तक रुकें। जहां तक मातृत्व अवकाश का प्रश्न है, उसके साथ भी अनेक जटिलताएं देखने में आती हैं। साल 2017 में मातृत्व प्रसूति लाभ अधिनियम (संशोधित) लागू होने के बाद से ही कंपनियां महिलाओं को रखने में कतराने लगी हैं।

वर्ष 2004-05 से 2011-12 में महिलाओं की निकासी की दर सात साल में कुल 28 लाख रही। संशोधित मातृत्व लाभ अधिनियम के बाद एक साल में लाखों महिलाओं की नौकरी जाना हैरान करता है। जमीनी सच्चाई यह है कि संपूर्ण कार्य व्यवस्था लाभ-हानि के गणित पर टिकी है जिसके कारण महिलाओं को नौकरी पर रखने से कंपनियां बचती हैं। आज भी एक तिहाई कंपनियां ऐसी हैं जहां महिला कर्मचारी रखी तो गई हैं लेकिन उनकी संख्या दस फीसद से भी कम हैं। एक सर्वे में एक चौथाई कंपनियों ने स्वीकार किया कि वे महिलाओं की तुलना में पुरुष कर्मचारियों को काम पर रखना ज्यादा पसंद करेंगी। 65 फीसद कंपनियों ने माना कि वे महिलाओं को नौकरी नहीं देना चाहतीं और इसके पीछे कारण यह है कि कंपनियों में कारोबार मुनाफे के लिए किया जाता है व सवैतनिक मातृत्व अवकाश, कंपनियों के लिए हानि का सौदा है।

कामकाजी महिलाएं सिर्फ यही भेदभाव नहीं झेलती हैं, सामाजिक स्तर पर भी निरंतर उपेक्षा का सामान कर पड़ता है। स्त्री की प्राथमिक जिम्मेदारी परिवार और बच्चों की देखभाल है। आज भी दुनियाभर में महिलाएं अपनी दिनचर्या का दो-तिहाई समय घर और परिवार की देखभाल में व्यतीत करती हैं। आंकड़े बताते हैं कि 1997 के मुकाबले 2012 में महिलाएं इन कामों में औसतन 15 मिनट कम समय व्यतीत करती हैं, जबकि इसी अवधि में घर के कामों में पुरुषों की हिस्सेदारी दिन भर में केवल आठ मिनट बढ़ी है। इसी गति से घर के कार्यों में पुरुषों और महिलाओं को बराबर भागीदारी हासिल कर पाने में दो सदियां लग जाएंगी। प्रश्न यह उठता है कि जब महिलाएं अपने परिवार की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए घर से बाहर निकल सकती हैं तो पुरुष क्यों नहीं घरेलू कार्यों में सहयोग नहीं करते? दरअसल, संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था कुछ इस तरह की है कि पुरुषों का घरेलू कार्यों में सहयोग उनकी तथाकथित 'पुरुषत्व' की छवि को चोट पहुंचाता है और यही कारण है कि विकसित समाज से लेकर विकासशील समाजों तक कई बार पुरुष स्वयं को घरेलू दायित्व और बच्चों की देखभाल से दूर रखते हैं।

इस तथ्य की पुष्टि उन आंकड़ों से की जा सकती है जो जापान की ही नहीं, पूरे विश्व की पितृसत्तात्मक व्यवस्था को उघाड़ते हैं। जापान में तीस हफ्ते का पितृत्व अवकाश पाने का कानून है, जहां 2017 में हर बीस में से सिर्फ एक पिता ने अपने इस विशेषाधिकार का इस्तेमाल किया है। ये आंकड़े यह बताने के लिए काफी हैं कि समाज ने स्पष्ट रेखा खींच रखी है और स्त्री का दायरा, घर-परिवार के लिए सुनिश्चित कर रखा है। अगर वह इससे इतर कुछ करना चाहती है तो शर्त यही है कि घर के कार्यों में व्यवधान नहीं आना चाहिए। लेकिन क्या यह उचित है? आधी आबादी को साथ लिए बगैर, क्या कोई देश सही मायनों में तरक्की कर सकता है। भारत की स्थिति बेहद चिंताजनक है, क्योंकि सिर्फ 27 फीसद महिलाएं श्रम शक्ति में हैं।

दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि वे परिवार जो आर्थिक सुदृढ़ता को बनाए रखने के लिए महिला सदस्यों से नौकरी करने की अपेक्षा रखते हैं, वे उनके घरेलू दायित्वों को बांटना नहीं चाहते। ऐसे में उनके सामने दो ही रास्ते बचते हैं, या तो वे मातृत्व दायित्व को निभाने के लिए नौकरी छोड़ दें या पेशेवर जिंदगी को बनाए रखने के लिए मां बनने से बचें। अब भी समय है कि महिला सशक्तिकरण के दावों के बीच हम उस ठोस धरातल को ढूंढें जहां महिलाओं के पारिवारिक दायित्वों को घर के पुरुष साझा करें ताकि वे भी अपनी प्रतिभाओं को नवीन आयाम दे सकें।

आरोही (स्वतंत्र लेखाकार)

सम्पादकीय

जीवन में लगातार सीखते रहें, क्योंकि सीखने की कोई उम्र नहीं होती

➤ महात्मा गांधी ने आजीवन सत्य अहिंसा तथा प्रेम का पाठ पढ़ाया परंतु खेद है कि हम उसे केवल 'तोते' की तरह कंठस्थ तो कर लेते हैं किंतु उसे सीख नहीं पाते।

यह अक्सर कहा जाता है कि सीखने की कोई अवस्था नहीं होती, जो कि सत्य मान्यता है। हम यदि प्राच्य ग्रन्थों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि मां के गर्भ में स्थित शिशु भी सीखने का प्रयास करता है, तभी तो सुभद्रा के गर्भ में रहकर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह-बेधन की कला सीख ली थी।

अबोध बच्चे में ग्रहणशीलता अपेक्षाकृत अधिक रहती है। यही कारण है कि वह अच्छाई अथवा बुराई को त्वरित ग्रहण करता है। आपको यदि अपना बचपन स्मरण हो तो ज्ञात कीजिए कि घर-बाहर के गुणावगुण को आप कितने शीघ्र और सुगमतापूर्वक ग्रहण कर लेते थे। घर-परिवार के बड़े-बूढ़े जो भी पढ़ाते थे;स्मरण कराते थे, आप उनको शीघ्रतापूर्वक आत्मसात् कर जाते थे। ऐसा इसलिए कि तब आपका मन-मस्तिष्क विकारयुक्त नहीं होता था और आपकी ग्राह्यसामर्थ्य उत्कृष्ट कोटि की होती थी।

आज, जब स्वयं को युवावस्था में पाते हैं तब अपने घर-परिवार और आस-पास की समस्याओं से इतने ग्रस्त रहते हैं कि अपने मूल उद्देश्य से रहित होने लगते हैं और आपका मन-मस्तिष्क विकेंद्रित होने लगता है। इसका प्रभाव यह होता है कि आप सीखने की प्रक्रिया के साथ जुड़ नहीं पाते। ऐसा इसलिए भी होता है कि आप अपने मूल उद्देश्य 'अध्ययन' से भटक जाते हैं, फिर सीखने-जैसी कोई बात रह ही नहीं जाती।

सीखता वह है, जो स्वयं को अपूर्ण मानता है और जीवन-संसार में बहुत-कुछ सीखकर स्वयं को शीर्ष पर प्रतिष्ठित होते देखना चाहता है। सीखने अथवा शिक्षण-पद्धति के अंतर्गत अनेक विषय-भाषा, साहित्य, संगीत, कला, क्रीड़ा, विज्ञान आदि होते हैं, जिसे हमारे विद्यार्थियों के लिए सीखना अपरिहार्य होता है; क्योंकि जीवन की डगर में कब-किस ज्ञान की कहां आवश्यकता आ पड़े, कोई नहीं जानता है।

इसके लिए हमारे विद्यार्थियों में सीखने के प्रति ललक और लालसा होनी चाहिए, जो उसे परिपक्व बनाती हैं। हमें जब यह ज्ञात है कि सीखने के लिए कोई अवस्था नहीं होती तब यह भी जान लेना चाहिए कि सिखानेवाले की भी कोई अवस्था नहीं होती। ऐसा हमने अपने जीवन और आसपास के वातावरण से सीखा है। वह यह कि हम जब कोई भूल करते हैं; हम जब कोई कार्य असावधानीवश करते हैं, तब हमारी अवस्था से बहुत कम अवस्था का व्यक्ति भी हमारा पथप्रदर्शन करता है। ऐसे में, हमारा दायित्व बनता है कि हम उस व्यक्ति के बताये मार्ग पर चलें। इस प्रकारवह हमारा 'शिक्षक' होता है। मैं अपना अनुभव बताऊं, मैं 'प्रकृति' को अपना 'वास्तविक गुरु' मानता हूं; क्योंकि प्रकृति ऐसी गुरु है, जो हमें देती ही है; हमसे कुछ लेती नहीं। हमारा देश महात्मा गांधी को अपना आदर्श मानता है; परंतु उनके द्वारा बताई गई राह पर चलता नहीं।

देश के नागरिक यह पढ़ते तो हैं- महात्मा गांधी ने आजीवन सत्य, अहिंसा तथा प्रेम का पाठ पढ़ाया; परंतु खेद है कि हम उसे केवल 'तोते' की तरह कंठस्थ तो कर लेते हैं; किंतु उसे सीख नहीं पाते। इसलिए हमारे विद्यार्थियों को चाहिए कि वे अपनी इच्छाशक्ति को सुदृढ़ करें।